OPEN ACCESS

Int. Jr. of Contemp. Res. in Multi. *PEER-REVIEWED JOURNAL* *Volume 5 Issue 1 [Jan- Feb] Year 2026*

Research Article

मानव एवं पर्यावरण के संबंधों का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. विमल कुमार सिंह [1*], मोहिनी कुमारी गुप्ता [2]

[1] पूर्व विभागाध्यकक्ष एवं प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बी0 एन0 मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर मधेपुरा, बिहार, भारत

[2] शोधार्थी, इतिहास विभाग, बी0 एन0 मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर मधेपुरा, बिहार, भारत

Corresponding Author: *डॉ. विमल कुमार सिंह

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.21869061

सारांश

सम्पूर्ण पृथ्वी एक है। पर्यावरणीय समस्या सभी की समस्या है। विकास एवं पर्यावरण एक दूसरे के विपरीत स्थिति के द्योतक नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य तथा उसका पर्यावरण दोनों परस्पर एक-दूसरे से इतने सम्बन्धित है कि उन्हें एक-दूसरे से अलग करना कठिन है। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण घटक है। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण की आन्तरिक निर्भरता को नहीं पहचान पा रहा है। इसीलिए सभी ओर प्रदूषण फैल रहा है। प्राचीन काल से ही यह धारणा रही है कि पर्यावरण को क्षति पहुँचाने का अर्थ अपना अहित करना है। प्रायः यह देखा जाता है कि मानवीय विचारधारा तथा दृष्टिकोणों को बदलने में, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं का व्यापक असर देखने को मिलता है। पर्यावरण की समस्या की भयावहता को देखते हुए समाधान के हर संभव प्रयास की आवश्यकता है इसके लिए मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्ति का विकास किया जाए, जिससे प्राकृतिक स्रोतों का दोहन कम-से-कम एवं संतुलित मात्रा में किया जाए और पृथ्वी तथा प्रकृति की पवित्रता को बनाए रखा जाए। इस दृष्टि से प्रस्तुत आलेख को गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। जिससे प्राकृतिक स्रोतों के दोहन से बचा जा सके और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को सुलझाया जा सके। मनुष्य एवं उसके पर्यावरण में सामंजस्य रखने में ही मानव का कल्याण है। जैसे-जैसे प्रकृति एवं पर्यावरण के विनाश की हमें जानकारी प्राप्त होती जा रही है, वैसे पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्धन के प्रयासों की तथा विश्व के पर्यावरण को कैसे अक्षुण्य रखा जाये, इन प्रश्नों की अनिवार्यता भी बढ़ती जा रही है। पर्यावरण सम्बन्धी नैतिक एवं धार्मिक मान्यताओं के अज्ञानता के कारण पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन की समस्याओं के समाधान में इन मान्यताओं (मूल्यों) का उपयोग पूर्णरूपेण नहीं हो पा रहा है। यदि उनका उपयोग होता तो निःसंदेह पर्यावरण की समस्या का समाधान होता। भारत में पर्यावरण की संचेतना कोई नया प्रत्यय नहीं है, यह हमारी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों में समाहित है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 08-01-2026
- **Accepted:** 25-02-2026
- **Published:** 28-02-2026
- **IJCRM:**5(1); 2026: 679-683
- **©2026, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

सिंह वि. कु, गुप्ता मो. कु. मानव एवं पर्यावरण के संबंधों का ऐतिहासिक विश्लेषण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2026;5(1):679-683.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मूल शब्द: पर्यावरण संतुलन, सतत विकास, प्रदूषण, नैतिक मूल्य, इत्यादि।

© 2026 डॉ. विमल कुमार सिंह, मोहिनी कुमारी गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

मनुष्य की अधिक और अधिक उत्पाद वृद्धि प्राप्त करने अतृप्त अभिलाषा ने स्वर्गीय पृथ्वी को नरकमय बना डाला है। पारिस्थ्ैतिकीय तंत्र में असंतुलन, पर्यावरणीय अवक्रमण, वन्य जीव-जन्तुओं एवं पेड़-पौधों की तीव्रतर विलुप्ति, अनियंत्रित जनसंख्या विस्फोट एवं मानव स्वास्थ्य की बदतर होती स्थिति सभी आधुनिक मानव (भ्वउव ैंचपमद) मस्तिष्करहित क्रिया-कलापों के परिणाम है। निश्चित परिधि वाली पृथ्वी पर भौतिक अभिवृद्धि (चीलेपबंस हतवूजी) सर्वदा के लिए जारी नहीं रह सकती है। मानव जनसंख्या का विस्फोट और जीवमण्डल पर इसके बढ़ते अचयनित हस्तक्षेप स्वयं मानव की उत्तरजीविता के लिए खतरनाक बन गये हैं। वास्तव में मानव जनसंख्या का विस्फोट सर्वाधिक खराब और मूल किस्म का प्रदूषण है। सभी प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ जो भावी मानवजाति हेतु खतरा उत्पन्न कर रही हैं, वे मूलतः एक ही तत्व से उत्पन्न हो रही है वह तत्व है, जनसंख्या बाहुल्य। बीसवीं शताब्दी के पूर्व तक यह जनभावना थी, ''प्रगति का तात्पर्य-जनसंख्या, अधिक जनसंख्या का तात्पर्य अधिक प्रगति और अधिक प्रगति का तात्पर्य-सम्पन्नत -सम्पन्नता। बीसवीं शताब्दी में स्थिति विपरीत हो गयी है। अस्तु, जनसंख्या का तात्पर्य है- उत्पाद वृद्धि, अधिक जनसंख्या का तात्पर्य है अधिक उत्पाद वृद्धि, अधिक उत्पाद वृद्धि का तात्पर्य है प्राकृतिक संसाधनों का ज्यादा शोषण, प्राकृतिक साधनों के ज्यादा शोषण का तात्पर्य है, पर्यावरणीय असंतुलन और परिणामस्वरूप उत्पन्न स्वयं मानवजाति को खतरा। विश्वयुद्धों के पश्चात् उत्पादन वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हेतु होड़ लग गयी। एक लम्बी अवधि तक उत्पाद वृद्धि में होड़ लग गयी। कई देश स्वतंत्र हो गये जो प्राकृतिक साधन सम्पन्न थे। पाश्चात्य जीवन शैली अपनाने, सुख-सुविधा प्राप्त करने आदि के होड़ में प्राकृतिक संसाधनों का जमकर दोहन किया गया। पारम्परिक समाज से सामाजिक परिवर्तन आधुनिकीकरण की ओर हुआ। आधुनिकीकरण का माध्यम उत्पाद वृद्धि बनायी गयी और इसे सम्भव बनाने हेतु आधुनिक प्रौद्योगिकी का सहारा लिया गया। आधुनिकीकरण के तीन आयाम बने औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं प्रौद्योगिकीकरण। इन तीनों के संयुक्त परिणाम से पर्यावरण प्रदूषण हुआ और पर्यावरण प्रदूषण से पारस्थैतिकीय तंत्र में असंतुलन आया। जब वैश्विक उष्माकरण के चक्रीय प्रभाव की चर्चा हो रही थी जो रूस, स्कैन्डीनेविया और कनाडा को सूर्यतले स्थान बनाने का अवसर दिया और प्रदर्शित किया कि ध्रुवीय बर्फीले शिखा पिघलायी जा सकती है, साइन्स नामक पत्रिका में प्रकाशित एक लेख ने विनिवेश की इस प्रकार राय सन् 1949 में ही दी थी, ''कोई व्यक्ति जो इस सूचना का प्रयोग कर उत्तरी वास्तविक सम्पदा में चिरकालिक विनिवेश करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे ऊँची भारत में पर्यावरण की संचेतना कोई नया प्रत्यय नहीं है, यह हमारी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति तथा पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों में रची-बसी है। प्रकृति के अंगों-उपांगों को देवता स्वरूप मानने की परम्परा भूमि खरीदें, क्योंकि हिमानी चोटी के पिघलने पर समुद्र का स्तर 1501 ऊँचा उठ जायेगा। जॉन बॉन न्यूमैन ने सन् 1955 में ही प्रश्न किया था क्या हम प्रौद्योगिकी से बच जायेंगे 21 जो इस समय अब तक सुरक्षा कवच समझे जाने वाले भौगोलिक और राजनैतिक बचावों को हटा कर पृथ्वी के सीमित संसाधनों को खतरा उत्पन्न कर रहा है। इसने प्राकृतिक पर्यावरण में सचेत और उप मानव हस्तक्षेप के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए बढ़ते कार्बन डाई आक्साइड उत्सर्जन के पड़ने वाले जलवायु पर प्रभाव और समुद्र तल के संभावित ऊपर उठने की सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर भावी पीढ़ी से सम्बन्धित शंका व्यक्त की- ''पृथ्वी के चक्कर एवं उष्ण कटिबन्ध को गहन सौर्य गर्मी पर आश्रित सामान्य वायुमण्डलीय चक्र को विस्तृत मानव हस्तक्षेप गहन रूप से प्रभावित करेगा। यह सब एक देश के परिवेश को दूसरे देश से, परमाणविक युद्ध भय अथवा युद्ध से उत्पन्न अन्य खतरे की तुलना में ज्यादा गहन रूप से मिला देगा। स्टार्क ने स्पष्ट किया है कि अंशतः मानवं जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि अंशतः औद्योगिक प्रौद्येगिकी की मांग के परिणाम के कारण वातावरणीय और सामुद्रिक, तटीय और अन्त्रदेशीय जल प्रदूषण के माध्यम से देहाती भूमि के अवक्षय के माध्यम से, प्राकृतिक क्षेत्रों में पारिस्थैतिकीय तंत्र के विनष्ट होने के माध्यम से, पशुओं एवं पौधों के जीवन पर जीवनाशक दवाओं के प्रभाव और विश्व के प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित रिक्तीकरण और विनाश के माध्यम से वैश्विक संतुलन में गड़बड़ी मानव पर्यावरण को प्रभावित कर रही है। इस तरह यह स्पष्ट है कि पर्यावरण विचार का केन्द्रबिन्दु मनुष्य बन गया और मानव जीवन संरक्षण हेतु पर्यावरण की स्वस्थता एवं शुद्धता के उपायों की आवश्यकता पड़ने लगी। पर्यावरण संरक्षण का नया आयाम मानव पर्यावरण का संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विमर्श का मुद्दा बन गया। यह इसलिए भी आवश्यक बन गया कि पर्यावरण जो मानव के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास का अवसर प्रदान करता है, मानव इनका स्रष्टा और डालने बाला दोनों है। मानव पर्यावरण के दोनों पहलू-प्राकृतिक और मानव निर्मित उसकी भलाई के लिए आवश्यक हैं। मानव पर्यावरण पर विश्व ध्यान आकृष्ट करने का एक कारण यह भी है कि विकास कर केन्द्र बिन्दु अब मानव माना जा रहा है।

विकास का ध्येय केवल आर्थिक अभिवृद्धि नहीं है, बल्कि इससे ज्यादा है। विकास वस्तुओं के विकास हेतु नहीं बल्कि मानव को विकसित करने हेतु है। विकास के अन्तर्गत अभिवृद्धि और सामाजिक न्याय अथवा वितरणात्मक न्याय दोनों है। विकास में तीन तत्व है। प्रथम, विकास एक स्थिर अवधारणा न होकर एक प्रक्रिया है। द्वितीय, इस प्रक्रिया का अन्तिम ध्येय मूल्यपरक है और तृतीय, यह मूल्य उन लोगों का है जो उस प्रक्रिया से सम्बन्धित है। विकास का तात्पर्थ सम्पूर्ण सामाजिक विकास से है जिसमें प्रमुख कारक आर्थिक नहीं है, बल्कि मानवीय एवं सामाजिक है जिनका सम्बन्ध मूल मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति से है। मूल मानव आवश्यकताओं के अनार्गत ये सब अन्तर्निहित माने गये हैं कि अपने भविष्य को प्रभावित करने वाले निर्णयों में अपने को सम्बद्ध महसूस करने की आवश्यकता, अपने आस-पास के सहयोगी मानव प्राणियों की निकटता महसूस करने की आवश्यकता अर्थात मौनानुकूलता की आवश्यकता एवं अपनी भूतकालीन संस्कृति एवं भविष्य के कार्यों से सुसंगत उचित शिक्षा प्राप्त करने के आवश्यकताः बीमारियों से लड़ने के लिए सुरक्षित पेय जल, साँस लेने के लिए स्वच्छ हवा , खाद्योत्पत्ति हेतु उर्वर भूमि, अपने को वर्षा-ताप आदि संरक्षित करने हेतु कार्य करने की आवश्यकता है।

पर्यावरण नैतिकता (Environmental Ethics) मुख्य रूप से प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति इंसानी व्यवहार से जुड़ी है। यह इंसान, संस्कृति और उसके बायोफिजिकल (जैविक-भौतिक) पर्यावरण के बीच एक नैतिक

© 2026 डॉ. विमल कुमार सिंह, मोहिनी कुमारी गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

रिश्ता है। इसमें सही और गलत के वे नियम शामिल हैं जिन्हें स्पष्ट, व्यवस्थित और कोडिफाई (नियमबद्ध) किया जाना चाहिए और पर्यावरण के प्रति नैतिक रूप से जिम्मेदार हर व्यक्ति को इनका पालन करना चाहिए। पर्यावरण नैतिकता व्यक्ति के भीतर एक ऐसी शक्ति के रूप में विकसित होती है जो उसे पर्यावरण से जुड़े जीवन के विभिन्न पहलुओं पर फैसले लेने और काम करने के लिए प्रेरित करती है। यह मानवता के पर्यावरण के साथ रिश्ते, प्रकृति के प्रति समझ और जवाबदेही, और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकृति के कुछ संसाधनों को बचाकर रखने की जिम्मेदारी से जुड़ी है। पर्यावरण नैतिकता इसलिए जरूरी है क्योंकि यह मनुष्य को उनके कामों के बीच फर्क करने में मदद करती है जो पर्यावरण के लिए नुकसानदेह हैं और जो फायदेमंद हैं। आज विश्व में हम जिस पारिस्थितिक संकट का सामना कर रहे हैं, उसकी जड़ें मनुष्य की असीमित इच्छाओं, लोभ, अज्ञानता और जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण में निहित हैं। इतिहास उन असंख्य आपदाओं से भरा पड़ा है जिन्होंने पिछली कई शताब्दियों में मानवता पर भीषण कहर बरपाया है। मानव सभ्यता की शुरुआत से ही मनुष्य इन आपदाओं से जूझता आ रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में अपार प्रगति के बावजूद, प्रकृति की शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है और विश्व के बड़े क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं के प्रति संवेदनशील बने हुए हैं और उनकी संवेदनशीलता लगातार बढ़ती जा रही है। यह ध्यान देने योग्य है कि आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता दोनों में वृद्धि हुई है। भारत पिछली कई शताब्दियों में लगभग सभी प्रकार की आपदाओं के प्रति संवेदनशील रहा है। उपमहाद्वीप की अनूठी भौगोलिक स्थिति इसे सूखा, बाढ़, चक्रवात, भूकंप, सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती है। भारत पिछले कई शताब्दियों से लगभग सभी प्रकार की आपदाओं का शिकार रहा है। उपमहाद्वीप की अनूठी भौगोलिक स्थिति इसे सूखा, बाढ़, चक्रवात, भूकंप, सुनामी, भूस्खलन आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती है। एक अरब से अधिक आबादी वाले इस देश में परिवहन और संचार के मामले में दुनिया के सबसे कमजोर बुनियादी ढांचे में से एक है और नागरिकों को 21वीं सदी में मिलने वाली सुविधाओं का भी बहुत अभाव है। वास्तव में, सभी प्रकार की आपदाओं की आवृत्ति बढ़ रही है, जिसके परिणामस्वरूप चोटों, विकलांगताओं और मौतों में कई गुना वृद्धि हो रही है, जीवन-सहायक प्रणालियाँ बाधित हो रही हैं और पहले से ही गरीब जनता पर स्वास्थ्य, सामाजिक और आर्थिक बोझ बढ़ रहा है ''पर्यावरण शिक्षा'' की परिभाषा सबसे पहले मार्च 1970 में 'एजुकेशनल डाइजेस्ट' में विलियम स्टैप द्वारा दी गई थी। 22 अप्रैल 1970 को पहला पृथ्वी दिवस (Earth Day) मनाया गया - जो पर्यावरण की समस्याओं पर एक राष्ट्रीय जागरूकता कार्यक्रम था - और इसने आधुनिक पर्यावरण शिक्षा आंदोलन का रास्ता साफ किया। राष्ट्रपति निक्सन ने 'नेशनल एनवायरनमेंटल एजुकेशन एक्ट' (राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा अधिनियम) पारित किया, जिसका मकसद स्कूलों में पर्यावरण शिक्षा को शामिल करना था। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा को तब पहचान मिली जब 1972 में स्वीडन के स्टॉकहोम में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UN Conference on the Human Environment) हुआ। इस सम्मेलन में घोषणा की गई कि पर्यावरण शिक्षा का इस्तेमाल वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए एक साधन के तौर पर किया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने तीन प्रमुख घोषणापत्र तैयार किए, जिन्होंने पर्यावरण शिक्षा की दिशा तय की गया। मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का स्टॉकहोम घोषणापत्र (1972)। इस दस्तावेज में 7 घोषणाएँ और 26 सिद्धांत शामिल थे, जिनका मकसद ''दुनिया के लोगों को मानव पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए प्रेरित और निर्देशित करना'' था।आपदा से जुड़ी समस्याओं का कोई बना-बनाया समाधान नहीं है। 'मानव पर्यावरण पर स्टॉकहोम घोषणा' (Stockholm Declaration on Human Environment) एक अंतरराष्ट्रीय अपील थी, जिसका मकसद देश की सीमाओं के भीतर पर्यावरण संबंधी समस्याओं को हल करना था। इसकी तुलना में, 'पर्यावरण और विकास पर रियो घोषणा (Rio Declaration on Environment and Development) टिकाऊ विकास के सिद्धांत की एक मजबूत पुष्टि थी। स्टॉकहोम शिखर सम्मेलन के बाद भारत में पर्यावरण संरक्षण की कोशिशों को और ज्यादा बढ़ावा मिला। हालाँकि, ऐसा लगता है कि वैश्विक समस्याओं से जुड़े सबक किसी तक नहीं पहुँच रहे हैं। वैश्विक बहुपक्षीय पर्यावरण समझौतों के साथ समस्या यह है कि उनमें अपने संदेश को ग्रामीण इलाकों तक पहुँचाने की कोई योजना नहीं है, खासकर उन जरूरी प्राथमिकताओं के बारे में जिनकी पहचान इन समझौतों के तहत की गई है। अमेरिका और जापान जैसे कई विकसित देशों ने भी अतीत में गंभीर आपदाओं का सामना किया है और अब भी कर रहे हैं। लेकिन आपदा प्रबंधन के लिए एक मिली-जुली रणनीति अपनाकर, जिसमें तैयारी और आपदा के असर को कम करने के तरीके और समुदाय की सक्रिय भागीदारी शामिल है, इस समस्या को कम किया जा सकता है। ये देश लोगों पर आपदाओं के असर को काफी हद तक कम करने में सफल रहे हैं। लोगों को प्रशिक्षित और शिक्षित करने के लिए जरूरी कदम उठाने से पहले, इन देशों को डेटा और जानकारी इकट्ठा करने, उसका विश्लेषण और जांच करने में कई साल लगे। ये देश लगातार रिसर्च और डेटाबेस इकट्ठा करके अपनी आपदा प्रबंधन क्षमताओं को मजबूत कर रहे हैं। भारत में आपदा प्रबंधन का काम अभी शुरुआती दौर में हैय इस विषय के महत्व को हाल ही में, यानी 1999 में राष्ट्रीय स्तर पर पहचाना गया, जब अगस्त 1999 में श्री जे.सी. पंत की अध्यक्षता में एक उच्च-स्तरीय समिति (HPC) का गठन किया गया था। एच. पी. सी. का मकसद राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर आपदा प्रबंधन योजना की समग्र रूप से समीक्षा करना और प्राकृतिक आपदाओं पर विचार करना था। मनोविज्ञान ऐसी मानवीय समाज बनाने की कोशिश करता है जो प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल कम शोषणकारी तरीके से करे। पर्यावरण के प्रति जागरूकता और नजरिए का स्तर किसी व्यक्ति के इकोलॉजिकल व्यवहार (यानी पर्यावरण को बचाने या संरक्षित करने वाले काम) को तय कर सकता है। हाल ही में हुई एक क्रांतिकारी स्टडी ने पर्यावरण के प्रति नजरिए को इकोलॉजिकल व्यवहार का एक मजबूत संकेतक बताया है। पर्यावरण के प्रति नजरिए के तीन मुख्य हिस्से - भावना, ज्ञान और इरादा - इकोलॉजिकल व्यवहार का अनुमान लगाने में इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इकोलॉजिकल व्यवहार पर ऐसी कई चीजों का असर पड़ सकता है जो किसी व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर होहैं।हैं । उदाहरण के लिए, पानी की कीमत पानी के संरक्षण पर असर डालती हैय घर का डिजाइन ऊर्जा की खपत पर असर डालता हैय राजनीतिक उपाय

© 2026 डॉ. विमल कुमार सिंह, मोहिनी कुमारी गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

समाज द्वारा संसाधनों के सही इस्तेमाल औरध्या कम से कम कचरा पैदा करने को बढ़ावा या कम कर सकते हैं। इस तरह, सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाएँ भी यह तय कर सकती हैं कि कौन सा इकोलॉजिकल व्यवहार अपनाना आसान है और कौन सा मुश्किल। निस्वार्थ भाव और पर्यावरणवाद ऐसे आंतरिक कारक हैं जो पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार को स्वतंत्र रूप से प्रभावित करते हैं । पर्यावरण की रक्षा के लिए व्यक्ति की वास्तविक प्रतिबद्धता शिक्षा के स्तर, व्यक्तिपरक कल्याण के स्तर और कुछ हद तक जनसंख्या के दबाव के स्तर पर निर्भर करती है। बुजुर्गों और युवाओं में पर्यावरण के प्रति उच्च जागरूकता उन्हें पर्यावरण-अनुकूल जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरित कर सकती है, जैसे प्राकृतिक संसाधनों का समझदारी से इस्तेमाल और कम से कम कचरा पैदा करना। इसमें बीमारियों, गरीबी और कचरे के जमाव को खत्म करने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता का संरक्षण, कचरे का पुनर्चक्रण और ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग शामिल हो सकता है। लोगों की ऐसी पर्यावरण-अनुकूल सोच उनके आस-पास के पर्यावरण के प्रति उनके व्यवहार में एक बड़ा बदलाव ला सकती है, जो प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, कचरा पैदा करने और उसके पुनर्चक्रण के तरीकों एवं पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं और प्राकृतिक पारिस्थितिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति उनके नजरिए में दिख सकता है। इससे पर्यावरण और विकास एक-दूसरे के पूरक बन सकते हैं। पर्यावरण के प्रति विकसित एवं विकासशील देशों के दृष्टिकोण में सदैव से भिन्नता रही है। मानव पर्यावरण संरक्षण एवं विकास हेतु अलग-अलग पर्यावरणीय संरक्षण प्रयासों की अपेक्षा समग्र प्रयास करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में प्राकृतिक सम्पदाओं के दोहन पर, वनों के कटान पर, नदियों के जल में कूड़ा, कचरा प्रेषित करने पर बल देकर पर्यावरण संतुलन के स्थान पर प्रदूषण को बढ़ाया जा रहा है। जो जीवनप्रदायनी हवा, पानी को जहरीला बनाता जा रहा है, ये बड़ी समस्या उत्पन्न करने का स्रोत बन गया है। इसका निदान किसी मिल, फैक्ट्री या किसी भण्डार गृह बंद होने से नहीं हो सकता बल्कि मनुष्य की चेतना एवं प्राकृतिक सम्पदाओं के संरक्षण से हो सकता है। इसका वास्तविक स्वरूप प्राचीन काल में दृष्टिगोचर होता है यदि प्राचीन काल की मान्यताओं को आज दृष्टिगत रखा जाए तो पर्यावरण संरक्षण हो सकता है। वर्तमान वैश्विक स्तर के सम्मेलन, सतत विकास की अवधारणा एवं भारतीय कानून एवं परपराओं को धरातल पर उतारा जा सकें। पर्यावरण नैतिकता इसलिए महत्वपूर्ण है कि पर्यावरण के लिए नुकसानदेह और फायदेमंद कामों के बीच अंतर करने में मदद करती है, क्योंकि समाज अलग-अलग नजरिए वाले लोगों से बना है। मनुष्य के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक शक्तियाँ ही सर्वोपरि है, इसलिए पर्यावरणीय तत्त्वों का आदर करते हुए पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण संवर्द्धन को ही मनुष्य द्वारा सर्वोपरि धर्म माना जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. हबीब इ. मनुष्य एवं पर्यावरण: भारत का पारिस्थितिकी इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2020.
2. James W. Great men, great thoughts, and the environment. In: Shaping Entrepreneurship Research. London: Routledge; 2020. p.131-149.
3. कुमार अखिलेश. मानव एवं पर्यावरण. मुंबई: किताब राइटिंग पब्लिकेशन; 2024. p.22-45.
4. Goudie AS. Human Impact on the Natural Environment: Past, Present and Future. 8th ed. Chichester: John Wiley & Sons; 2018.
5. Arthur DR. Man and His Environment. New Delhi: Concept Publishing Company; 1969. p.25-35.
6. Medhekar K. A critical analysis of relationship between the man and the environment. AIRO Journal. 2022:283-291.
7. Sivaramakrishnan K. Ethics of nature in Indian environmental history: A review article. Mod Asian Stud. 2015;49(4):1261-1310.
8. Leggett JA, Carter NT. Rio+20: The United Nations Conference on Sustainable Development, June 2012. Washington (DC): Congressional Research Service, Library of Congress; 2012.
9. Chakrabarty D. The climate of history: Four theses. Crit Inq. 2009;35(2):197-222.
10. Sohn LB. The Stockholm Declaration on the Human Environment. Harv Int Law J. 1973;14:423-515.
11. McNamara RS. Address to the United Nations Conference on the Human Environment, Stockholm, June 8, 1972. Washington (DC): World Bank; 1972.
12. United Nations. Rio Declaration on Environment and Development. Rio de Janeiro: United Nations Conference on Environment and Development; 1992.
13. Waldheim K, Palme O, Gandhi I, Ke T, Westing AH, Commoner B, et al. Human environment. Bull Peace Proposals. 1972;3(3):226-239.
14. White R. Environmental history, ecology, and meaning. J Am Hist. 1990;76(4):1111-1116.
15. Melosi MV. The place of the city in environmental history. Environ Hist Rev. 1993;17(1):1-23.
16. American Society for Environmental History. Environmental History. Available from: https://aseh.org/Journal
17. Journal for the History of Environment and Society (JHES). Available from: https://journals.sas.ac.uk/jhes/

© 2026 डॉ. विमल कुमार सिंह, मोहिनी कुमारी गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

18. Hall ET. Ecological Psychology: Concepts and Methods for Studying the Environment of Human Behaviour. New York: Wiley; 1969.
19. Marsh GP. Man and Nature. Seattle (WA): University of Washington Press; 2003.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

About the Author

डॉ. विमल कुमार सिंह बिहार के प्रख्यात इतिहासविद् एवं शिक्षाविद् हैं। आप बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा (बिहार) के इतिहास विभाग में पूर्व विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर रहे हैं। भारतीय इतिहास, सामाजिक परिवर्तन तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आपके उल्लेखनीय शोध, शिक्षण एवं अकादमिक योगदान को व्यापक रूप से सराहा गया है।

© 2026 डॉ. विमल कुमार सिंह, मोहिनी कुमारी गुप्ता. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/